स्वामी विवेकानन्द की कहानियाँ

स्वामी विवेकानन्द की कहानियाँ

सन्तराम व्रत्स्य

गोविन्दराम हासानन्द दिल्ली-6

दो शब्द

'स्वामी विवेकानन्द की कहानियाँ' उनकी रचनाओं और प्रवचनों से संकलित है। वैसे उनके प्रवचन-व्याख्यान भी मुद्रित रूप में उपलब्ध हैं।

इस तरह भी दोनों प्रकार की कहानियाँ दृष्टान्त-रूप में व्यवहृत हुई हैं। लिखते या बोलते समय लेखक-वक्ता जब विषय को सुबोध बनाने के लिए कहानी का सहायक सामग्री के रूप में उपयोग करता है तो कहानी का मुख्य कथ्य-सन्देश बताना ही उसे अभिप्रेत होता है, और यही समयोचित भी होता है। इस काम में कहानी आनुषंगिक रूप में प्रयुक्त होती है। वह केन्द्र नहीं होती, परिधि में उसका गौण स्थान होता है। पर जब इन्हीं कहानियों को वहाँ से उठाकर सुकुमार-मति पाठकों के लिए रोचक और शिक्षाप्रद सामग्री के रूप में प्रस्तुत किया जाता है तो शेष भाग को कैमरे के सामने नहीं किया जाता; और जितना अंश कैमरे के सामने किया जाता है, उसे खूब एनलार्ज कर लिया जाता है, ताकि उस अंश की सारी बारीकियाँ और खूबियाँ उभरकर सामने आ जाएँ।

लेखक और वक्ता को स्थान और समय की जिस सीमा में रहकर अपने कर्त्तव्य का निर्वाह करना होता है, वैसी सिकुड़ी सीमा उन कहानियों को अलग से देते समय नहीं होती। कथा के मूल उत्स से सहायता लेने की पूरी सुविधा होती है और इस वर्धित चित्र के जिस किसी भाग को पुनर्कथित करने वाला चाहे उसको दोबारा एनलार्ज करके फोकस कर सकता है।

हमारी बहुत-सी दृष्टान्त-कथाएँ हमारे लोक और शिष्ट साहित्य में से ली गई हैं। उपनिषदों और पुराणों में उनका अक्षय कोश है। मैंने उसी मूल उत्स का सहारा लेकर पुनर्कथन का काम किया है।

स्वामी विवेकानन्द आधुनिक भारत के नवजागरण के अग्रदूत हैं। भारत के जन-मन को चेताने में उनका योगदान अविस्मरणीय है।

स्वामी विवेकानन्द की कहानियों का यह उपहार पाठकों के हाथों में देते हुए, हम स्वामी जी के प्रति श्रद्धावनत हैं।

—सन्तराम वत्स्य

कहानी-क्रम

१. अपने को पहचानो ··· ७
२. सोने का नेवला ··· ११
३. नचिकेता ··· २१
४. उपाय ··· ३२
५. राबिया ··· ३५
६. मदालसा ··· ४८

अपने को पहचानो

जंगल में एक शेरनी रहती थी। उसके बच्चा होने वाला था। वह भूखी थी और किसी शिकार की खोज में थी। उसे भेड़ों का एक झुंड दिखाई दिया।

ज्योंही उसने जोर से छलाँग लगाई, वह गिर पड़ी और मर गई। इस बीच उसने एक शेर बच्चे को जन्म दे दिया।

अब इस बच्चे को कौन दूध पिलाता और पालता! एक भेड़ के मन में माँ की ममता जाग उठी। उसने अपने बच्चे के साथ उसे भी दूध पिलाना शुरू कर दिया। भेड़ के बच्चे के साथ शेरनी का बच्चा भी बढ़ने लगा। वह भी जंगल में घास और पत्तियाँ खाता; अपने साथियों की तरह ही मिमियाता। जब कभी भेड़ के बच्चे गीदड़ को देख लेते तो सारे डर के भागते लगते और मिमियाते। उनका साथी शेरनी का बच्चा भी वैसा ही करता।

एक दिन की बात है : एक खरगोश लम्बी-लम्बी छलाँगें भरता भागा जा रहा था। उसका पीछा लोमड़ी

कर रही थी। जब वह खरगोश भागता हुआ भेड़ के बच्चों के पास से निकला तो वे सब डर गए। शेरनी का बच्चा भागकर पास की झाड़ी में जा छिपा। जब खरगोश और लोमड़ी दूर निकल गए, तब वह डरता-सहमता झाड़ी में से निकला और भेड़ के बच्चों में जा मिला।

कुछ वर्षों में वह शेरनी का बच्चा बड़ा होकर पूरा शेर बन गया। पर वह अब भी घास-पत्तियाँ खाता और अपने को भेड़ ही समझता। वह जरा-सा खटका होने पर डर जाता और भय से काँपने लगता।

एक दिन एक भूखा शेर शिकार की खोज में वहाँ आ निकला। उसने देखा कि भेड़ों के झुंड में एक शेर भेड़ों की तरह घास और पत्तियाँ चर रहा है। उसे बड़ा आश्चर्य हुआ। उसने सोचा कि कहीं मुझे भ्रम तो नहीं हो रहा है? उसने अपनी आँखें मलीं और फिर ध्यान से देखने लगा।

उसने देखा कि यह तो सचमुच शेर है, पर भेड़ों की तरह घास खाता है और उससे भेड़ें डरती भी नहीं। कितने आश्चर्य की बात थी!

शेर ने सोचा कि जरा और पास जाकर देखूँ कि बात क्या है?

वह और पास जाकर देखने लगा। अब उसे

पक्का निश्चय हो गया कि यह शेर ही है। पर उसकी समझ में नहीं आया कि यह कैसा शेर है जो भेड़ों के बीच भेड़ जैसा बनकर रहता है ? अपने को भेड़

समझता है जबकि यह शेर है।

शेर थोड़ा-सा गुर्राया और उसने अपना पंजा जमीन पर पटका।

फिर क्या था, भेड़ों का वह झुंड, जिसमें वह शेर-बच्चा भी था, भागने और मिमियाने लगा।

शेर ने सोचा, यह शेर भ्रमवश अपने को भेड़ समझ रहा है। कोई ऐसा उपाय करना चाहिये, जिससे यह अपने को पहचान जाए, अपनी असलियत जान जाए। वह उचित अवसर की प्रतीक्षा करने लगा।

एक दिन अपने को भेड़ समझने वाला शेर जंगल में झाड़ी के नीचे सोया पड़ा था। शेर ने उसके पास जाकर कहा, "तुम शेर हो।"

शेर-बच्चा जाग गया और बोला, "मैं भेड़ हूँ।"

शेर ने कहा, "आओ, मेरे साथ उस तालाब तक चलो। मैं तुम्हें तुम्हारा असली रूप दिखाऊँगा।"

दोनों तालाब के किनारे पहुँचे। दोनों पानी की ओर मुँह करके खड़े हो गये। शेर ने कहा, "इधर पानी में देखो। यह रहा मेरा प्रतिबिम्ब और वह रहा तुम्हारा प्रतिबिम्ब। दोनों का मिलान करके देखो।"

उस शेर-बच्चे ने पहले शेर की ओर देखा और फिर पानी में अपने प्रतिबिम्ब की ओर।

फिर तो उसे यह समझने देर नहीं लगी कि 'मैं शेर

हूँ।'

जंगल का शेर जोर से गर्जा। उसे सुनकर शेर-बच्चा भी वैसे ही जोर से गर्जा। आस-पास के जंगल के जानवर सारे डर के भाग खड़े हुए और छिप गए।

*

सोने का नेवला

धर्मक्षेत्र कुरुक्षेत्र में कौरवों और पाण्डवों में जो महायुद्ध हुआ था, उसमें पाण्डवों की विजय हुई थी। धर्मराज युधिष्ठिर ने, जो पाँचों पाण्डवों में सबसे बड़े थे, श्रीकृष्ण की अनुमति से अश्वमेध यज्ञ किया। इस यज्ञ में उन्होंने ब्राह्मणों तथा दीन-दुःखियों को बेहिसाब धन-सम्पत्ति का दान किया। चारों ओर धर्मराज युधिष्ठिर के इस यज्ञ की धूम मच गई। राजा से लेकर रंक तक जिसे देखो, वही यज्ञ की प्रशंसा कर रहा था। भिखारियों को इतना दान दिया गया था कि भविष्य में उन्हें किसी से माँगने की आवश्यकता ही नहीं रह गई थी। वे भिखारी से धनवान् बन गए थे। चारों दिशाओं में लोगों की जबान पर इस यज्ञ की चर्चा थी। जानकारों का कहना था कि इससे पहले इतना बड़ा

यज्ञ किसी राजा ने नहीं किया था और भविष्य में भी कोई इतना बड़ा यज्ञ नहीं कर पाएगा। ऐसा अभूतपूर्व था धर्मराज महाराज युधिष्ठिर का अश्वमेध यज्ञ।

यज्ञ सम्पन्न हो जाने पर वहाँ यज्ञभूमि के पास एक ऐसा नेवला प्रकट हुआ, जिसका आधा शरीर सुनहला था। वह नेवला यज्ञभूमि में लोटने लगा। इस विचित्र नेवले को यज्ञभूमि में अपने शरीर को रगड़ते देखकर समस्त उपस्थित लोग आश्चर्यचकित रह गए। और जब वह नेवला मनुष्यों की वाणी में बोलने लगा तब तो सभी अवाक् रह गए।

नेवला बोला, "यह कहना सच नहीं है कि राजा युधिष्ठिर के इस यज्ञ जैसा यज्ञ कभी किसी ने नहीं किया। सच तो यह है कि इसे 'यज्ञ' कहना ही ठीक नहीं है। यदि यह सचमुच यज्ञ होता तो मेरा यह आधा शरीर भी सोने का हो जाता।"

उपस्थित लोग, जो बड़ी उत्सुकता से नेवले को देख और सुन रहे थे, एक-दूसरे की ओर देखने लगे। उनमें से एक ने नेवले से कहा, "तुम्हारा यह कहना किसी तरह भी उचित नहीं है। तुम्हें मालूम नहीं है कि राजा ने कितना धन-धान्य दान किया है। तुम्हारे इस कथन का आधार क्या है कि यह यज्ञ तो यज्ञ कहलाने के योग्य भी नहीं है? यह अश्वमेध यज्ञ शास्त्र

की मर्यादा और विधि-विधान के अनुसार प्रसिद्ध आचार्यों और वेद-वेत्ता ब्राह्मणों द्वारा सम्पन्न हुआ है। इसमें किंचित् मात्र भी त्रुटि नहीं हुई है।"

यह सुना तो नेवला उपेक्षा से उपहास करता हुआ बोला, "जो कुछ आपने कहा, मुझे उसे जानने की कतई आवश्यकता नहीं है। फिर भी मैं कहता हूँ कि यह यज्ञ, यज्ञ कहलाने के योग्य भी नहीं है।"

"किन्तु तुम्हारे इस कथन का आधार क्या है?" उस व्यक्ति ने पूछा।

नेवला बोला, "मुझे किसी बाहरी प्रमाण या आधार की आवश्यकता नहीं है।"

सभी लोग इस संवाद को ध्यान से सुनने लगे। नेवले ने अपनी बात जारी रखी, "एक ऐसा यज्ञ मैंने देखा है, जिसकी याद मेरे जीवन का ही नहीं, मेरे शरीर का भी हिस्सा बन गई है। धर्मक्षेत्र कुरुक्षेत्र में एक धर्मात्मा ब्राह्मण रहता था। वह अपने पास कुछ भी जमा नहीं रखता था। फसल काटते-समेटते समय किसानों से जो अन्न इधर-उधर गिर जाता, वह उसे बटोर लाता और उसी से परिवार का निर्वाह करता था। उसके परिवार में उसकी पत्नी, पुत्र, पुत्रवधू और स्वयं—ये चार जन थे।

ब्राह्मण जो कुछ इकट्ठा करके लाता, उसे ही

चारों आपस में बाँट लेते और भगवान् का भजन करते हुए सन्तुष्ट रहते। वे कठिनाई से तीसरे दिन भोजन करते। यदि कभी तीसरे दिन भी भोजन न मिलता तो फिर उसके तीसरे दिन करते। कभी कोई अतिथि आ जाता तो पहले उसे भोजन कराते, और यदि कुछ बच रहता तो आपस में बाँट लेते।

कुछ समय बाद उस क्षेत्र में देर तक वर्षा न होने से अकाल पड़ गया। फसलें उगी नहीं। ब्राह्मण को खेतों में बिखरा अन्न बीनने को नहीं मिला। बेचारा खाली हाथ लौट आता और सारा परिवार उपवास करके रह जाता। इस तरह जब कई दिन उपवास करते बीत गए तो एक दिन ब्राह्मण को कहीं से थोड़े-से जौ मिले।

सास-बहू ने जौ साफ किए, कूटे-पीसे और उनसे सत्तू तैयार किए। कई दिनों के बाद आज भोजन का जुगाड़ हुआ था, इसीलिए सभी के मन में प्रसन्नता थी।

सत्तू को चार बराबर भागों में बाँटकर, जब वे खाने के लिए बैठे तो उसी समय दरवाजे पर एक बूढ़े और दुबले ब्राह्मण अतिथि ने भिक्षा के लिए आवाज लगाई।

ब्राह्मण देवता परोसे हुए सत्तुओं को छोड़कर उठ

खड़े हुए। बाकी लोगों ने भी भोजन शुरू नहीं किया।

उस ब्राह्मण को घर के भीतर लाकर आसन देकर बिठाया। भूख से व्याकुल अतिथि ने कहा, "भूख के मारे मेरे प्राण निकले जा रहे हैं। जल्दी से कुछ खाने को हो तो लाओ।"

ब्राह्मण ने आदरपूर्वक अपने हिस्से के सत्तू अतिथि देवता को खाने को दे दिये।

अतिथि देवता उन सत्तुओं को झटपट चट कर गए और बोले, "इनसे तो कुछ नहीं बना। यदि कुछ और हो तो दो! कई दिनों का भूखा हूँ।"

ब्राह्मण ने सोचा कि इस अतिथि को अब कैसे तृप्त करूँ?

पति के मन की चिन्ता को समझकर ब्राह्मणी बोली, "हे स्वामी! यह मेरे हिस्से का सत्तू इन अतिथि देवता को दे दीजिए ताकि ये यहाँ से तृप्त होकर जाएँ।"

पत्नी के कहने पर भी ब्राह्मण को हिम्मत नहीं पड़ी कि उसके आगे परोसे सत्तू उठाकर अतिथि को दे दे। वह जानता था कि यह कई दिनों से भूखी है। इसका शरीर हड्डियों का ढांचा मात्र रह गया है। उसकी वैसी हालत को जानकर ब्राह्मण ने कहा, "शोभने! तुम्हारी रक्षा और पालन-पोषण करना मेरा

कर्त्तव्य है। इसलिए तुम जो कह रही हो, वह उचित नहीं है। मेरी गृहस्थी तुम्हारे ही सहारे चलती है। धर्म, अर्थ, काम और वंश की वृद्धि, सभी कुछ पत्नी के अधीन होता है। इसलिए मैं तुम्हारे हिस्से का भोजन उठाकर कैसे दे दूँ!"

ब्राह्मणी बोली, "मेरा और आपका धर्म और अर्थ एक ही है। मैं आपकी अर्धांगिनी जो हूँ। आप मुझे अपने से भिन्न न समझें और ये सत्तू इन अतिथि देवता को दे दीजिए। पत्नी तो पति का आश्रय पाकर ही कुछ करने में समर्थ होती है। आपकी हालत कौन-सी मेरी हालत से अच्छी है! मुझ पर कृपा करें और ये सत्तू अतिथि देव को दे दें।"

पत्नी के इस तरह आग्रह करने पर ब्राह्मण ने उनके हिस्से के सत्तू उठाए और अतिथि के आगे रखते हुए कहा, "यह लीजिए, इन सत्तुओं को भी ग्रहण कीजिए।"

अतिथि ने वे सत्तू भी जल्दी-जल्दी खा डाले, पर अभी भी उसकी तृप्ति नहीं हुई। वह भूखी आँखों से ब्राह्मण की ओर देखने लगा और आसन पर ज्यों-का-त्यों बैठा रहा।

उसे अतृप्त बैठा देखकर, ब्राह्मण के चेहरे पर फिर चिन्ता छा गई। इतने में ब्राह्मण के पुत्र ने कहा,

"पिताजी, ये मेरे हिस्से के सत्तू भी अतिथि देवता को दे दीजिए।"

ब्राह्मण बोला, "तुम चाहे जितने बड़े हो जाओ, मेरे लिए तो सदा बालक ही रहोगे। बालकों को भूख बहुत सताती है। मैं तो बूढ़ा हूँ। मैं भूख को सह सकता हूँ। तुम यह सत्तू खा लो और अपने प्राणों की रक्षा करो।"

ब्राह्मण-पुत्र बोला, "पिताजी, आपका पुत्र होने के कारण मेरा भी कुछ कर्त्तव्य है। आपके अतिथि-सेवा के कार्य में सहायक होना मेरा कर्त्तव्य है। पुत्र तो पिता की आत्मा ही होता है। इसलिए बिना संकोच के इन सत्तुओं को अतिथि को देकर तृप्त कीजिए।"

ब्राह्मण बोला, "बेटा! मैंने कई बार तुम्हारी परीक्षा ली है और तुम हर बार खरे उतरे हो। तुममें आत्म-संयम का गुण मुझ जैसा ही है। यही सोचकर मैं तुम्हारे सत्तुओं को भी अतिथि को दे रहा हूँ।" यों कहकर ब्राह्मण ने सत्तू उठाकर अतिथिदेव को दे दिये।

पर उन सत्तुओं को खाकर भी अतिथि देवता के पेट की आग शान्त नहीं हुई। यह देखकर ब्राह्मण संकोच से धरती में गड़-सा गया।

तभी उसकी पुत्रवधू अपने हिस्से के सत्तू देती हुई बोली, "श्वसुर जी, आप तनिक भी संकोच मत कीजिए।

मेरे हिस्से के ये सत्तू अतिथि देवता को दे दीजिए। अतिथि देवता की तृप्ति से ही हमारा मंगल होगा।"

श्वसुर ने कहा, "बेटी! मैं देख रहा हूँ कि लगातार भूखी रहने से तुम्हारी क्या हालत हो गई है। ऐसी अवस्था में तुम्हारे हिस्से के सत्तू कैसे उठाकर दे दूँ? इसके लिए तुम मुझे क्षमा करो! तुम्हारा मुँह भूख से कुम्हला गया है। तुम्हारी उमर ही क्या है? फिर तुम नारी हो और कई दिनों के उपवास से भूखी भी हो।"

पुत्रवधू बोली, "आप मेरे गुरु (पति) के भी गुरु हैं। मेरे देवता के भी देवता हैं। मेरे पूज्य हैं। आपकी सेवा से ही मेरा जीवन सफल है। मेरे ऊपर कृपा करें और मेरे हिस्से के ये सत्तू अतिथिदेव को परोसकर उन्हें तृप्त करें।"

वधू की बात सुनकर वृद्ध ब्राह्मण निरुत्तर हो गया। उसने वधू के हिस्से के सत्तू भी अतिथि के आगे रख दिये।

भोजन करने बैठे अतिथि ने उन्हें भी झटपट समेटा। अब उसकी भूख शान्त हुई। उसने पानी पीकर तृप्ति-सूचक डकार ली। वह आसन से उठ खड़ा हुआ। ब्राह्मण ने हाथ धुलाए और आशीर्वादों की वर्षा करता हुआ वह अतिथि, जिसके रूप में साक्षात् धर्म ही (पुरुष

का रूप धारण कर) परीक्षा लेने के लिए आया था, बोला, "हे ब्राह्मण ! आपके शुद्ध-सात्त्विक भोजन से मैं तृप्त हुआ।

"तुमने आज इस अन्नदान से अपने समस्त पितरों को तार दिया। हे ब्राह्मण ! इस दान के द्वारा तुमने देवताओं को भी प्रसन्न कर लिया। इस दुष्काल के समय, जबकि अन्न का एक ग्रास भी मिलना दुर्लभ हो गया है, तुमने त्याग द्वारा स्वर्ग को भी जीत लिया।

"भूखे आदमी की बुद्धि मारी जाती है। भूखा व्यक्ति धर्म की बात को भी अनसुना कर देता है। भूखा व्यक्ति धैर्य आदि सद्‌गुणों को छोड़ बैठता है। जिसने भूख को जीत लिया मानो उसने स्वर्ग ही जीत लिया।

"तुमने पत्नी, पुत्र और पुत्रवधू के स्नेह से भी बढ़कर अतिथि को माना। जिसकी हजार देने की सामर्थ्य है उसका सौ देना, जिसकी सौ देने की सामर्थ्य हो उसका दस देना, और जिसकी केवल पानी पिलाने की सामर्थ्य हो उसका पानी पिलाना—इन सबका फल बराबर है।

"धर्मराज बहुत धन-सम्पत्ति के दान से वैसे प्रसन्न नहीं होते जैसे श्रद्धायुक्त स्वल्पमात्र से प्रसन्न होते हैं।

"न बड़ी-बड़ी दक्षिणा वाले राजसूय यज्ञ से और

न अश्वमेध यज्ञों से ही वैसा पुण्य प्राप्त होता है, जैसा तुम्हारे इन सेर-भर सत्तुओं के दान से तुम्हें मिला।

"हे ब्राह्मण! मैं वेश बदलकर तुम्हारी परीक्षा लेने आया था। मैं धर्म हूँ। मेरे वास्तविक स्वरूप को देखो! यह विमान तुम्हें स्वर्ग ले जाने के लिए उपस्थित है। तुम सपरिवार स्वर्ग का सुख भोगने के लिए इस पर बैठो।"

पूरी कथा सुनाने के बाद नेवला पुनः बोला, "सत्तुओं की गंध पाकर मैं उस पत्तल के पास पहुँचा जिसमें अतिथि ने भोजन किया था। उसके स्पर्शमात्र से मेरा सिर और आधा शरीर सुनहला हो गया। ऐसा उस ब्राह्मण के उन सत्तुओं के दान का माहात्म्य था।

"तब से जहाँ-कहीं कोई बड़ा यज्ञ होता है, मैं यह सोचकर वहाँ जा पहुँचता हूँ कि मेरा शेष आधा शरीर भी सुनहला हो जाए। कुरुराज युधिष्ठिर के इस यज्ञ की बात सुनकर मैं यहाँ इस आशा से आया था कि मैं पूरा सुनहला हो जाऊँगा, पर वैसा हुआ नहीं। इसीलिए मैंने कहा था कि यह यज्ञ, धर्मात्मा ब्राह्मण के उन सेर-भर सत्तुओं के दान की बराबरी भी नहीं कर सका।"

*

नचिकेता

उद्दालक नाम के एक आचार्य थे। उनके गुरुकुल में बहुत शिष्य थे। उन्होंने निश्चय किया कि वे 'विश्वजित्' यज्ञ करेंगे।

'विश्वजित्' यज्ञ में यजमान अपना सब-कुछ दान कर देता है।

यज्ञ तभी सफल होता है, जब यज्ञ में भाग लेने वाले ब्राह्मणों को दक्षिणा दे दी जाए।

यज्ञ की पूर्णाहुति सम्पन्न हो जाने पर उद्दालक ने ब्राह्मणों को दक्षिणा देकर विदा करना प्रारंभ किया।

आचार्य उद्दालक के पास बहुत गौएँ थीं। ब्राह्मणों को दक्षिणा के साथ गौएँ भी देनी थीं।

गोशाला से गौएँ ब्राह्मणों को दी जाने लगीं। इसी समय उद्दालक के मन में विचार आया, 'सब गौएँ दे देने पर मेरा काम कैसे चलेगा?'

अब आचार्य उद्दालक को एक नई चाल सूझी। वे बूढ़ी-बूढ़ी गायों को दक्षिणा में देने लगे। जो अच्छी-तगड़ी दुधारू गौएँ थीं, उन्हें चालाकी से गोठे कर दिया।

आचार्य उद्दालक का एक पुत्र था—नचिकेता। नचिकेता अभी बालक ही था। पिता की चालाकी को

वह भाँप गया। उसने देखा कि बूढ़ी, सूखे थनों वाली और जिन्होंने बछड़े देने बन्द कर दिये हैं, ऐसी गौएँ ब्राह्मणों को दी जा रही हैं। इससे तो पुण्य के बदले पाप ही मिलेगा।

बालक नचिकेता को लगा कि पिताजी कुछ अनुचित कर रहे हैं। यज्ञ की दीक्षा लेते समय उन्होंने सब-कुछ दे देने का संकल्प किया था; अब उस बात से फिर रहे हैं। उसने सोचा कि किसी तरह उन्हें उनकी प्रतिज्ञा की याद दिलाऊँ।

वह पिता के पास जाकर बोला, "पिताजी! आप मुझे किसे देंगे?"

नचिकेता का अभिप्राय यह था कि आपको तो अपना सब-कुछ दान में देना है। मैं भी आपका हूँ, तो आप मेरा दान किसे करेंगे?

उद्दालक ब्राह्मणों को विदा करने में व्यस्त थे। इस समय पुत्र की बात सुनने और उसका उत्तर देने की फुर्सत उन्हें नहीं थी।

पुत्र नचिकेता की बात उद्दालक ने अनसुनी कर दी।

नचिकेता ने दोबारा कहा। उद्दालक फिर टाल गए। अपने काम में लगे रहे।

नचिकेता ने तीसरी बार फिर वही बात कही।

उद्दालक ने आँखें तरेरकर नचिकेता की ओर देखा। उन्हें लगा कि यह बालक मेरा उपहास कर रहा है। मैं तो अच्छी-अच्छी गायों को भी बचाकर अपने पास रख रहा हूँ और यह समझ रहा है कि मैं पुत्र का भी दान कर दूँगा।

क्रोध में विवेक नष्ट हो जाता है। उद्दालक ने भी क्रोध के आवेश में कह दिया, "मैं तुझे यमराज के हवाले करूँगा।"

नचिकेता सोचने लगा, 'पिताजी मुझे यमराज के हवाले करके उनका कौन-सा कार्य करवाना चाहते हैं ?'

विचार करने पर उसकी समझ में यही आया कि संभवतः क्रोध में पिताजी ने ऐसा कह दिया है।

फिर आज्ञाकारी पुत्र की तरह नचिकेता ने निश्चय किया कि मैं पिता की आज्ञा का पालन करूँगा।

उधर उद्दालक पुत्र को ऐसी अशुभ बात कहकर बहुत पछता रहे थे।

पुत्र नचिकेता ने पिता की कठिनाई को समझते हुए कहा, "पिताजी ! आप अपनी कही हुई बात को झूठा कैसे कर सकते हैं ? आप सोचिये कि क्या आपके पिता, दादा या परदादा ने कभी ऐसा किया है ? भले लोग कभी भी झूठ का सहारा नहीं लेते। जीना-मरना तो लगा ही रहता है। फिर अपने चरित्र को दाग क्यों

लगने दिया जाए? अब आप मुझे यमराज को सौंपकर अपनी कही बात को सच कीजिये।"

नचिकेता के इस प्रकार कहने पर पिता ने उसे यमराज को सौंप दिया।

जब नचिकेता यमराज के भवन में पहुँचा तो पता लगा कि वे बाहर गए हुए हैं। यमराज तीन दिन और तीन रातें नहीं लौटे, फिर भी नचिकेता भूखा-प्यासा वहीं टिका रहा।

तीन दिन बाद जब यमराज अपने भवन में लौट आए, तो उन्हें पता लगा कि घर के बाहर कोई ब्राह्मण-कुमार तीन दिन से डेरा डाले पड़ा है। न उसने कुछ खाया है और न पिया है।

यमराज को पता लगा तो उन्होंने अपनी पत्नी और मंत्रियों को समझाते हुए कहा, "यदि कोई ब्राह्मण अतिथि के रूप में किसी के घर आए तो उसे अग्नि का स्वरूप ही समझना चाहिए। उसका आदर-सत्कार करते हुए उसके हाथ-पाँव धुलाने चाहियें और पीने को शीतल जल तथा भोजन के लिए फल-कन्दमूल देने चाहिएँ।" उन्होंने यह कहकर विवस्वान को तुरन्त जल लाने के लिए कहा। फिर उन्हें समझाते हुए बोले, "जिसके घर में ब्राह्मण अतिथि भूखा-प्यासा रहता है, उस मन्दबुद्धि गृहस्थ के सारे पुण्यों का फल नष्ट हो

जाता है। इसलिए ब्राह्मण अतिथि की सेवा-सत्कार में तनिक भी असावधानी नहीं करनी चाहिए।"

फिर उन्होंने नचिकेता का आदर-सत्कार किया।

नचिकेता ने भी यमराज को प्रणाम किया और अपना परिचय दिया; अपने आने का प्रयोजन भी बताया।

अब यमराज उन्हें अपने भवन में ले आए। इस बालक को यमराज की अनुपस्थिति में जो तीन दिन-रात वहाँ रहना पड़ा था, इसके लिए यमराज के मन में बहुत खेद था। अब बालक की बोल-चाल से और शिष्टाचार से उनके मन में वात्सल्य-भाव उमड़ पड़ा था।

यमराज बोले, "हे ब्राह्मण-कुमार! आप मेरे पूजनीय अतिथि हैं। मेरा नमस्कार स्वीकार करें। बिना खाए-पीये आप तीन रातें मेरे घर में रहे। इसके बदले में मैं आपको तीन वर देता हूँ। मैं आपके मंगल की कामना करता हूँ। आप अपने मनचाहे तीन 'वरदान' माँग सकते हैं।"

नचिकेता ने कहा, "हे मृत्युदेव! आपकी कृपा के लिए मैं आपका आभारी हूँ। पहले वरदान के रूप में, मैं चाहता हूँ कि मेरे पिताश्री का मेरे प्रति जो क्रोध था, वह दूर हो जाए। वे मुझ पर प्रसन्न हों। जब

आप मुझे पिता के पास लौट जाने की अनुमति दें और मैं लौटकर उनके पास जाऊँ तो वे मुझे पहचान लें और मेरे साथ स्नेहपूर्वक बातचीत करें, यह मैं आपसे

पहला वर माँगता हूँ।"

मृत्युदेव बोले, "प्रिय कुमार! मौत के मुख से लौटे तुम्हें देखकर, तुम्हारे पिता तुम्हें पहचान लेंगे। मेरी प्रेरणा से उनका क्रोध शान्त हो गया होगा और वे रात को चैन की नींद सोएँगे।"

अब नचिकेता ने दूसरा वर माँगा। वह बोला, "स्वर्गलोक में प्राणी निर्भय होकर रहते हैं। वहाँ आपका (मृत्यु का) डर भी नहीं होता और न वहाँ बुढ़ापे का डर होता है। वहाँ भूख-प्यास भी नहीं सताती। वहाँ शोक से मुक्त होकर लोग मजे में रहते हैं। ऐसे आनन्ददायक स्वर्गलोक को प्राप्त करानेवाले साधन अग्नि को आप जानते हैं। कृपा करके मुझ श्रद्धालु के प्रति उसका उपदेश कीजिए, जिसके द्वारा स्वर्ग को प्राप्त हुए पुरुष, अमृत की प्राप्ति करते हैं। दूसरे वरदान से आप मुझे यही दीजिए।"

मृत्युदेव बोले, "हे कुमार नचिकेत:! मैं स्वर्ग लाभ करवानेवाली उस अग्नि को अच्छी तरह जानता हूँ। मैं तुझे उसका उपदेश करूँगा। तू मुझसे उसे अच्छी तरह समझ ले। इसे तू अनन्त लोक की प्राप्ति करानेवाली, उसका आधार और अत्यन्त रहस्यमय जान।"

यह कहकर यमराज ने आनन्ददायक स्वर्गलोक

की प्राप्ति करानेवाली अग्नि के बारे में बहुत-सी बातें बताईं।

फिर यमराज ने नचिकेता से पूछा, "मैंने तुम्हें जो कुछ बताया, वह सब तुमने समझ लिया क्या ?"

तब नचिकेता ने जैसा समझा था, वह कह सुनाया।

यमराज यह जानकर प्रसन्न हुए कि मेरी बात को इसने ठीक-ठीक समझा है। वे बोले, "मैं इसी बात के लिए एक और वर देता हूँ कि तुमने मेरी कही बात को ठीक-ठीक समझा।

"अब यह अग्नि, जिसके बारे में अभी मैंने तुम्हें बताया, तुम्हारे ही नाम अर्थात् 'नचिकेता अग्नि' के नाम से प्रसिद्ध होगी। और यह रत्नों की माला भी मेरी ओर से स्वीकार करो।

"माता-पिता और आचार्य से सुशिक्षित व्यक्ति ही त्रिणाचिकेताग्नि का उपासक है। ज्ञान, मनन और उसके अनुसार आचरण ही त्रिणाचिकेत अग्नि की उपासना है। 'मातृदेवो भव, पितृदेवो भव, आचार्यदेवो भव' इस श्रुति-वचन के अनुसार आचरण ही त्रिणाचिकेत अग्नि की उपासना है।

"जन्म-मृत्युरूप संसार-सागर से पार होने का यही उपाय है। उस परब्रह्म-स्वरूप, ज्योति एवं पूजा और

उपासना के योग्य परमात्मदेव को शास्त्र और गुरुवाणी से जानकर, आत्म-प्रतीति द्वारा परम शान्ति की प्राप्ति होती है। आत्म-प्रतीति, आत्मानुभूति द्वारा ही ज्ञान विज्ञान कहलाता है।

"जो इस त्रिणाचिकेत अग्नि-विद्या को विधिवत् जान लेता है, वह विद्वान् देहपात के पूर्व ही, मृत्यु के बन्धन से मुक्त होकर, शोकरहित होकर, स्वर्गलोक में आनंदित होता है।

"हे नचिकेतः ! अब तुम तीसरा वर मांगो !"

नचिकेता ने कहा, "मरे हुए प्राणी के बारे में लोग तरह-तरह की बातें करते हैं। कुछ कहते हैं कि आत्मा अविनाशी है। शरीर के नाश के साथ उसका नाश नहीं होता। परन्तु कुछ लोग इस बात को नहीं मानते। वे कहते हैं कि शरीर के साथ ही सब-कुछ नष्ट हो जाता है। आत्मा-विषयक इस ज्ञान का उपदेश आप मुझे करें। यह मैं तीसरे वर के रूप में आपसे मांगता हूं।"

यमराज बोले, "पूर्वकाल में देवताओं को भी इस बारे में संशय हुआ था। यह आत्मा-विषयक ज्ञान अत्यन्त रहस्यपूर्ण है और आसानी से समझ में आने-वाला भी नहीं है। इसके बदले तुम कोई और वर मांग लो। इसे रहने दो।"

नचिकेता ने कहा, "जैसा कि अभी आपने कहा

कि देवताओं को भी इस बारे में संशय हुआ था और यह आसानी से समझ आने वाली बात है भी नहीं, इसलिए इसको जानने की मेरी इच्छा और भी बढ़ गई है। मैं समझता हूँ कि आत्मा-विषयक मेरी इस जिज्ञासा को आपके अतिरिक्त और कोई वक्ता शान्त भी नहीं कर सकता। इस महत्त्वपूर्ण वर की बराबरी दूसरा कोई भी वर नहीं कर सकता।"

यमराज बोले, "हे नचिकेता, तू सौ-सौ वर्ष की आयुवाले बेटे और पोते मुझसे माँग ले। गोधन, गजधन, रत्न और स्वर्णधन, कोई विस्तृत भूमि-भाग और अपने लिए लम्बी उमर माँग ले। इसकी बराबरी का कोई और वर, धन-सम्पत्ति, चिरस्थायी जीविका, तथा मनमानी कामनाओं की पूर्ति का वरदान मैं तुम्हें दे सकता हूँ।

"मृत्युलोक में जो-जो कामनाएँ दुर्लभ हैं, उनमें से जितनी चाहो, उतनी माँग लो। बाजों-गाजों और रथों के साथ देवांगनाएँ—अप्सराएँ—जो मनुष्यों को भी नहीं मिल सकतीं, यहाँ मौजूद हैं। मेरे द्वारा तुम्हें ये मिल सकती हैं। ये सदा तुम्हारी सेवा में तत्पर रहेंगी। परन्तु मैं तुमसे बार-बार कहता हूँ कि मरने के बाद प्राणी की क्या दशा होती है, इस प्रश्न को मत पूछ!"

नचिकेता बोला, "हे यमराज जी! ये भोग जिनका

प्रलोभन आप मुझे दे रहे हैं, आज हैं और कल नहीं। इतना ही नहीं, ये तो सारी इन्द्रियों के बल-सामर्थ्य को क्षीण कर देते हैं। भोगों को भोगने वाला, उन्हीं के द्वारा भोग लिया जाता है। जीवन की अवधि है ही कितनी ! बस, थोड़ी-सी। ये अपने रथ, बाजे-गाजे और गाने-नाचने वालियाँ आप अपने ही पास रखिये। मुझे इनकी आवश्यकता नहीं है।

"मैं समझता हूँ कि मनुष्य की तृष्णा धन से कभी शान्त नहीं हो सकती। आपके दर्शनों के पुण्य-प्रभाव से धन तो मिल ही जाएगा। आपके शासन-काल में, अब मुझे जीवन का भय तो है ही नहीं। इसलिए मैंने आपसे जो वर माँगा है, वही चाहिए।

"देवलोक में पहुँचकर, जहाँ बुढ़ापा नहीं है, मृत्यु-लोक का वासी ऐसा कौन होगा जो जरा-मरण और आधि-व्याधि वाले स्पर्शजन्य भोगों में, लम्बे जीवन में सुख समझेगा ? अतः हे यमराजजी ! मृतक के सम्बन्ध में जो मेरा प्रश्न है, उसी का समाधान कीजिए। यह जो गूढ़ रहस्य है, इसे जानने के सिवा मुझे और कोई वर नहीं चाहिए।"

कोई भी बड़ा लक्ष्य लेकर जब पुरुषार्थी कार्य आरम्भ करता है, तो उसके मार्ग में अनेक प्रलोभन आते हैं। जो व्यक्ति प्रलोभनों की परवाह न करके

और विघ्न-बाधाओं से बिना घबराए अपने स्वीकृत लक्ष्य की ओर उन्मुख रहता है, वही सफल होता है। उसी का विजयश्री वरण करती है। उसका यश चिर-स्थायी रहता है।

नचिकेता की यह कहानी, संसार के सबसे बड़े भय—मृत्युभय से भी भयभीत न होने की कहानी है। नचिकेता ने बचपन में ही निर्भय होकर, मृत्यु का वरण किया था।

संसार में कोई भी अमर नहीं है। एक दिन सभी को मृत्यु का वरण करना है। परन्तु किसी महान् उद्देश्य की पूर्ति के लिए जो अपनी इच्छा से मृत्यु को गले लगाते हैं, उन्हीं की कीर्ति अमर रहती है।

*

उपाय

एक राजा अपने प्रधानमंत्री पर नाराज हो गया। राजा ने उसे किले के ऊँचे बुर्ज पर कैद कर दिया। बड़ा सख्त पहरा राजा ने बिठा दिया, ताकि कोई भी प्रधान मंत्री तक पहुँच न सके। एकदम अकेला बुर्ज में बन्द वह मन्त्री अपनी मौत की घड़ियाँ गिनने लगा।

उस मंत्री की पत्नी बड़ी आज्ञाकारिणी थी। वह अपने पति को कैद से निकालना चाहती थी, पर उसकी समझ में नहीं आ रहा था कि वह क्या करे!

एक रात को वह उस बुर्ज के नीचे पहुँची। मंत्री ने उसकी आवाज सुनकर पहचान लिया।

मंत्री की पत्नी ने पूछा कि मैं आपकी क्या सहायता करूँ, जिससे आप इस कैद से बाहर निकल सकें?

मंत्री ने कहा, "तुम आज से तीसरी रात को इसी समय यहां आना और अपने साथ एक मजबूत लम्बा रस्सा, एक दोहरी रस्सी और रेशमी महीन धागा लेती आना। साथ ही थोड़ा-सा शहद और एक भौंरा भी लेती आना।"

उस बेचारी की समझ में कुछ नहीं आया कि पतिदेव इन चीजों का क्या करेंगे। फिर भी वह पति की आज्ञानुसार सारी चीजें लेकर तीसरी रात उसी समय वहाँ जा पहुँची।

पति ने उसे समझाया कि रेशम के महीन धागे को भौंरे की कमर के साथ बांध दे। फिर जरा-सा शहद उसकी मूँछों पर लगाकर, उसका मुँह बुर्ज की ओर करके उसे किले की दीवार पर छोड़ दे।

उसने पति के कहने के अनुसार सारा काम सावधानी से पूरा किया।

भौंरा सीधा ऊपर की ओर चढ़ने लगा। पतला रेशमी धागा उसके साथ बँधा हुआ था। भौंरे को मूंछों में लगे शहद की गंध आ रही थी। वह पास ही आगे शहद है, यह सोचकर सरकता जा रहा था। सुगन्ध भी आगे सरकती जा रही थी, क्योंकि वह उसके साथ-साथ आगे बढ़ रही थी। रस का लोभी भँवरा रस के पास पहुँचने के लिए निरन्तर सरक रहा था।

अन्त में भँवरा बुर्ज की खिड़की के पास जा पहुँचा जहाँ मंत्री कैद था।

मंत्री की योजना सफल हो गई थी। उसने भँवरे से बँधा रेशमी धागा खोल लिया। रेशमी धागे का दूसरा छोर तो धरती पर खड़ी मंत्री की पत्नी के हाथ में था। अब मंत्री ने उसे समझाया कि तुम इस धागे के साथ पतली रस्सी को बाँध दो।

जब रस्सी बँध गई तो मंत्री ने रेशमी धागा खींचना शुरू किया। आप जानते ही हैं कि रेशमी धागा सूती धागे की अपेक्षा बहुत मजबूत होता है, इसलिए वह नहीं टूटा।

अब धागे के साथ बँधी रस्सी का एक छोर मंत्री के हाथ में आ गया। दूसरा छोर मंत्री की पत्नी के हाथ में था ही।

मंत्री ने उसे समझाया कि "अब तुम मजबूत रस्से

को, इस रस्सी के साथ बाँध दो !"

उसने वैसा ही किया और मंत्री ने रस्सी खींचना शुरू किया। फिर क्या था! मोटे-मजबूत रस्से का एक छोर भी मंत्री के हाथ में आ गया।

सारी समस्या हल हो गई। रस्से को बुर्ज की खिड़की से बाँधकर उसके सहारे मंत्री नीचे उतर आया। वह कैद से बाहर हो गया था। वह अपनी पत्नी को साथ लेकर कहीं दूसरे देश को भाग गया।

इस कहानी का अभिप्राय भी समझ लें।

हमारा श्वास-प्रश्वास ही बारीक रेशमी धागा है। यदि हम श्वास-प्रश्वास को नियमित और नियंत्रित कर लें तो हमारे शरीर में जितनी नाड़ियाँ हैं, उनकी शुद्धि हो जाएगी। रोग हमारे पास नहीं आएँगे। नाड़ियों की शुद्धि हो जाने से प्राण पर हमारा काबू हो जाएगा। प्राण पर नियंत्रण हो जाने से हम अपने लक्ष्य 'पूर्ण स्वतंत्रता' को प्राप्त कर लेंगे।

*

राबिया

राबिया का जन्म इराक देश के बसरा नामक नगर में हुआ था। राबिया अरबी भाषा का शब्द है और

इसका अर्थ है चौथी। राबिया अपने माता-पिता की चौथी पुत्री थी, इसलिए उसका नाम राबिया रख दिया गया था।

जिस रात इसका जन्म हुआ, घर में दीया जलाने तक के लिए तेल नहीं था। नाल काटने के बाद वहाँ लगाने के लिए भी तेल की बूँद तक नहीं थी। और तो और, नवजात बच्ची को लपेटने के लिए कपड़े का टुकड़ा तक नहीं था।

जब राबिया की माँ ने उसके पिता से अनुरोध करके कहा कि पड़ोसी के घर से थोड़ा तेल माँग लाओ ताकि दीया जलाया जा सके, तो वह अनमना-सा चला तो गया, पर पड़ोसी का दरवाजा खटखटाए बिना लौट आया और कह दिया कि वह दरवाजा नहीं खोलता है। बात यह थी कि उसने प्रण किया हुआ था कि परमपिता परमात्मा के सिवा किसी से कुछ नहीं माँगूंगा। वह घर आकर सो गया तो स्वप्न में क्या देखता है कि हजरत अकरम के दर्शन हुए। उन्होंने उसे ढाढस बँधाते हुए कहा कि तुम्हारी यह बिटिया बहुत प्रसिद्धि प्राप्त करेगी। इसके द्वार से एक हजार लोगों को मुक्ति मिलेगी। इसके बाद कहा कि तुम बसरा के शासक के पास एक कागज पर लिखकर ले जाओ कि तू प्रतिदिन एक सौ बार स्मरण करता है

और शुक्रवार की रात को चार सौ बार। किन्तु इस शुक्रवार की रात को तुम भूल गए। अतः प्रायश्चित्त के रूप में पत्रवाहक को चार सौ दीनार दो।

प्रातःकाल उठकर स्वप्न की बात आने पर आप बहुत रोए और स्वप्न में बताए अनुसार एक चिट्ठी लिखकर दरबान के द्वारा बसरा के शासक के पास भेज दी।

बसरा के शासक ने जब यह पत्र पढ़ा तो आज्ञा दी कि हुजूर अकरम ने मुझे याद किया, इसकी कृतज्ञता-स्वरूप दस हजार दिरहम फकीरों में बाँट दिए जाएँ और चार सौ दीनार पत्रवाहक को दे दिए।

बसरा का शासक उठकर आपसे मिलने आया और प्रार्थनापूर्वक बोला कि जब भी आपको किसी चीज की जरूरत हो, आकर मुझे सूचित कर दिया करें।

इन चार सौ दीनारों से उसने घर की जरूरत का सारा सामान खरीद लिया।

बचपन में ही राबिया के पिता का देहान्त हो गया। अकाल पड़ा हुआ था, इसलिए राबिया की तीनों बड़ी बहनें भी न मालूम बिछुड़कर कहाँ चली गईं। राबिया भी मारी-मारी भटक रही थी कि एक दुष्ट ने उसे पकड़ लिया और अपनी दासी बना लिया। थोड़े

दिनों बाद उसने छोटी-सी रकम के बदले उसे किसी दूसरे के हाथ बेच दिया।

यह नया मालिक राबिया से बहुत ज्यादा काम लेता था। एक दिन राबिया कहीं जा रही थी कि गिर पड़ी और हाथ टूट गया। इस समय उसने भगवान् से प्रार्थना की कि "हे स्वामी! मेरा कोई सम्बन्धी नहीं है और सहायता करने वाला भी नहीं। मैं तेरी कृपा की कामना करती हूँ।"

इसी समय आकाशवाणी हुई कि 'राबिया, चिन्ता न कर! तुझे ऐसी महानता प्राप्त होगी कि देवदूत भी ईर्ष्या करेंगे।'

इस दिव्य वाणी को सुनकर राबिया के मन में धीरज आया और ईश्वर की महिमा का स्मरण करती हुई वह अपने मालिक के घर लौट आई।

राबिया का यह नित्य का नियम था कि वह दिन में उपवास रखती और रातभर ईश्वर-चिन्तन करती।

उन दिनों अरब देशों में मनुष्यों की खरीद-बेच आम बात थी। जो व्यक्ति किसी पुरुष या स्त्री को खरीद लेता था, वह उसके साथ मनमाना व्यवहार करता था। वह उससे बहुत ज्यादा काम लेता था और जरा-सी भूल होने पर कठोर दण्ड देता था। आदमी भेड़-बकरियों की तरह खरीदे-बेचे जाते थे।

एक दिन आधी रात के समय, जबकि घर के सब लोग गहरी नींद में सो रहे थे, राबिया धीरे-धीरे गुनगुनाती हुई प्रभु की प्रार्थना में मग्न थी। वह कह रही थी, "हे मेरे प्रभु! आपसे मेरा हृदय छिपा हुआ नहीं है। मेरे हृदय में आपकी भक्ति-उपासना के लिए कैसी तीव्र इच्छा है, कैसी व्याकुलता है! मेरे बस में होता तो मैं दिन-रात तुम्हारे ही ध्यान-चिन्तन में बिता देती। तुमने मुझे पराई दासी बना दिया है। यही कारण है कि तुम्हारे भजन के लिए मैं समय नहीं निकाल पाती और मुझे देर हो जाती है।"

रात के सन्नाटे में घर के मालिक की नींद खुली तो उसे धीमे बोलने की आवाज सुनाई दी। उसने उठकर देखा तो राबिया की कोठरी में उसे शुभ्र प्रकाश दिखाई दिया। जब वह उधर गया तो क्या देखता है कि राबिया हाथ जोड़े अपने प्रभु से प्रार्थना कर रही थी। राबिया के चारों ओर भी उसे दिव्य तेज दिखाई दिया और उसने राबिया को स्तुति करते भी सुना।

इस चमत्कार को देखकर वह पछताने लगा कि जिसकी सेवा मुझे करनी चाहिए थी, उससे मैं अपनी सेवा करवा रहा हूँ।

परिणाम यह हुआ कि सवेरा होते ही उसने राबिया को स्वतंत्र कर दिया और प्रार्थना करने लगा

कि "आप इसी घर में रहें तो मुझे बड़ी प्रसन्नता होगी। मुझे सेवा का अवसर मिलेगा। वैसे यदि आप कहीं दूसरी जगह जाना चाहें तो आपकी इच्छा है।"

यह सुनकर राबिया नगर से बाहर निकल आईं और एकान्त में भगवद्-भजन में मग्न हो गईं।

राबिया दिन-रात में एक हजार रकअत (नमाज) पढ़ा करती थीं।

कुछ समय बाद राबिया मुसलमानों के पवित्र तीर्थ मक्का में हज की यात्रा करने निकलीं।

किसी-किसी धर्म में स्त्रियों का अविवाहित रहना अच्छा नहीं समझा जाता। एक फकीर ने राबिया से पूछा, "आपने विवाह क्यों नहीं किया? क्या कभी विवाह करने की इच्छा आपके मन में पैदा नहीं हुई?"

राबिया ने उत्तर दिया, "मैंने अपना तन-मन तो भगवान् को समर्पित कर दिया है। फिर मैं विवाह किस तरह कर सकती हूँ?"

थोड़े ही समय में राबिया का नाम सारे मक्का नगर में प्रसिद्ध हो गया। उसका नाम सुनते ही छोटे-बड़े सभी सम्मान के साथ सिर झुका देते। लोगों की भीड़ राबिया के दर्शनों के लिए टूट पड़ती। लोग उसके प्रवचनों को सुनने के लिए उत्सुक रहते।

हसन बसरी नामक एक फकीर उन दिनों वहाँ बहुत प्रसिद्ध थे। सप्ताह में एक दिन वह लोगों को उपदेश किया करते थे। राबिया भी उनके सत्संग में नियमपूर्वक जाती थीं।

एक बार किसी कारण राबिया सत्संग में उपस्थित न हो सकीं। हसन बसरी ने जब श्रोताओं की भीड़ पर दृष्टि डाली तो उन्हें राबिया कहीं दिखाई न दीं। यह देखकर वे उपदेश न करके चुपचाप बैठे रहे। उन्हें मौन साधे बैठे देखकर एक श्रोता ने प्रवचन करने की प्रार्थना की तो वे बोले, "राबिया अभी तक आई नहीं, उन्हें देख रहा हूँ।"

वह श्रोता बोला, "यहाँ सैकड़ों लोग आपका उपदेश सुनने के लिए मौजूद हैं। एक राबिया के आने या न आने से क्या फर्क पड़ता है?"

हसन बसरी बोले, "हाथी के लिए जो मधुर रस तैयार किया है, उसे चींटी के मुँह में कैसे डाल दूँ?"

राबिया के प्रति हसन बसरी के मन में कैसा उच्च भाव था, इसका पता उनके उपर्युक्त कथन से लगता है।

प्रवचन करते-करते जब हसन बसरी का मुख दिव्य आभा से भास्वर हो उठता था, तब वे कहते थे, "राबिया, तुम्हारे अन्तस् से ही यह तेज मेरे भीतर आता है।"

एक दिन हसन ने राबिया से प्रश्न किया कि "तुम ईश्वर की उपासना में इतनी ऊँची किस तरह उठ सकी?"

राबिया ने मुस्कराकर उत्तर दिया, "सांसारिक

वासनाओं का त्याग करके।"

राबिया का यह उत्तर बहुत ही संक्षिप्त है, किन्तु फिर भी इस छोटे-से उत्तर में अनेक गंभीर अर्थ छिपे हुए हैं। श्री रामकृष्ण परमहंस कहा करते थे, 'छोटे बच्चे को माँ तरह-तरह के खिलौने देकर बहला लेती है। खिलौनों से खेलता बच्चा माँ को भूल जाता है। बच्चा जब तक खिलौनों से बहला रहता है, माँ उसे गोदी में नहीं उठाती; संसार के काम-धन्धों में लगी रहती है। बीच-बीच में इस अबोध बालक को देख भी लेती है कि खेल में मग्न है। किन्तु जब इन खिलौनों से खेलते-खेलते बच्चा उकता जाता है तो माँ के लिए रोने लगता है। तब माँ सारे काम-काज छोड़कर भाग-कर आती है और बच्चे को गोद में उठाकर प्यार करती है और अपने हृदय का अमृतरस पिलाती है।"

मनुष्य पत्नी-पुत्र, धन-यश, 'मैं-मेरा' में व्यस्त रहता है। राबिया को इनमें से किसी की चाह नहीं थी। उसे परमात्मा के सिवा और किसी वस्तु की चाह नहीं थी। उसने सुख-सुविधाओं की बात कभी सोची ही नहीं। वह सदा कम-से-कम चीजें अपने पास रखती थीं। एक फटा-पुराना टाट का टुकड़ा उसका बिछौना था। एक ईंट उसके लिए सिरहाने का काम देती थी और एक मटका-भर पानी से उसका काम चल जाता

था। बहुत दूर-दूर तक राबिया की प्रसिद्धि थी। लोग इस बात की उत्सुकता से प्रतीक्षा करते थे कि राबिया की सेवा का कोई अवसर मिले। परन्तु राबिया थी कि किसी से अपनी सेवा नहीं करवाती थी। वह कहा करती थीं कि खाने-पीने और ओढ़ने-बिछाने की तंगी के बारे में बात करने में उन्हें बहुत शर्म लगती है।

यह जगत तो जगन्नाथ का ही है। अगर कुछ मांगना हो तो उसी से मांगना चाहिए, किसी दूसरे से नहीं। धनी और निर्धन, सबके भगवान् हैं। सभी उन्हीं की सन्तान हैं।

राबिया से सम्बन्धित अनेक चमत्कारपूर्ण घटनाओं का उल्लेख मिलता है।

एक दिन दो फकीर राबिया से मिलने आए। वे बहुत दूर से आए थे और भूखे थे। किन्तु राबिया के पास केवल दो रोटियां थीं, जो एक व्यक्ति की भूख मिटाने के लिए भी पर्याप्त नहीं थीं। राबिया इसी चिन्ता में थीं कि क्या करे और क्या न करे कि इतने में दरवाजे पर किसी भिखारी ने भिक्षा के लिए आवाज लगाई। राबिया ने वे दोनों रोटियां उठाकर भिखारी को दे दीं। यह देखकर उन फकीरों को आश्चर्य हुआ हुआ और कुछ दुःख भी कि अब भूखे ही रहना पड़ेगा।

कुछ देर बाद पड़ोस की एक दासी आई और

रोटियाँ राबिया को थमाती हुई बोली, "मालकिन ने ये आपके लिए भेजी है।"

राबिया ने रोटियाँ गिनकर देखी। उसके बाद दासी को रोटियाँ लौटाते हुए कहा कि "इन्हें वापस ले जाओ। ये मेरे लिए नहीं हैं। तुम्हें गलती लगी है।"

दासी ने कहा, "मुझे ये रोटियाँ आपको ही देने के लिए मालकिन ने कहा है। भूल कैसी ?"

पर राबिया नहीं मानी। बोली, "तुम इन्हें वापस ले जाओ। ये मेरे लिए नहीं हैं।"

दासी बेचारी रोटियां लेकर वापस चली गई।

जो दो अतिथि फकीर भूखे बैठे हुए थे, उन्हें रोटियां आई देखकर कुछ आशा बँधी थी, वह फिर निराशा में बदल गई। इसके साथ ही उन्हें आश्चर्य हुआ कि रोटियाँ क्यों लौटा दी गई।

थोड़ी देर बाद दासी फिर रोटियां लेकर आई। राबिया ने रोटियां ले लीं और गिनने लगी। गिनने के बाद रोटियां सँभालकर रख लीं।

अब राबिया ने फकीरों के आगे रोटियां परोस दीं। वे भोजन करने लगे। उनमें से एक ने राबिया से पूछा, "राबिया जी, पहली बार रोटियां गिनकर लौटा देना और दूसरी बार गिनकर रख लेना, यह रहस्य हमारी समझ में नहीं आया।"

राबिया मुस्कराकर बोली, "मेरे पास केवल दो रोटियाँ थीं और आप दोनों जने भूखे थे। उन दो रोटियों से आपकी भूख शान्त नहीं हो सकती थी। इतने में एक भिखारी आया और मैंने दोनों रोटियाँ उसे दे दीं। मैंने मन में परमात्मा का स्मरण करके प्रार्थना की कि आपने वायदा किया है कि मैं दान का दस गुना पुरस्कार दूंगा। मेरे घर भूखे अतिथि बैठे हैं और घर में कुछ है नहीं। यदि भिखारी को दी गई दो रोटियों के दान के पुरस्कार-स्वरूप आप मुझे बीस रोटियाँ दें तो मैं इन्हें भोजन कराऊँ। इतने में दासी रोटियाँ लेकर आई। मैंने गिनीं तो अठारह थीं। परमात्मा के प्रण के अनुसार बीस होनी चाहिए थीं। इसलिए मैंने लौटा दीं। किन्तु दासी जब दोबारा रोटियाँ लेकर आई तो बीस थीं। इसलिए मैंने रख लीं।"

जगत के ईश—स्वामी—हैं जगदीश। उनके भय से बहुत-से लोग उनकी उपासना करते हैं। बहुत-से लोग मरने के बाद स्वर्ग मिले, इसलिए दान-पुण्य करते हैं और भजन करते हैं। किन्तु वह भक्ति नहीं, व्यापार है। भगवान् के प्रति सच्ची भक्ति और प्रेम तो वही लोग करते हैं जो बदले में कुछ नहीं चाहते। केवल प्रभु को चाहते हैं।

राबिया बीमार थीं और उन्हें बहुत कष्ट था। दो संत उन्हें देखने आए। उनमें से एक संत बोले, "भगवान् का सतत स्मरण करने से भगवान् ऐसी सामर्थ्य प्रदान करते हैं कि बड़े से बड़ा कष्ट भी सहन किया जा सकता है।"

दूसरे संत बोले, "भगवान् की ठीक-ठीक भक्ति करना भी भगवान् की कृपा से ही संभव है। भगवान् के सच्चे भक्त उसके दिये सुख-दुःख को प्रसाद समझकर खुशी से स्वीकार करते हैं।"

राबिया ने कहा—"आपने जो कुछ कहा, वह सच है। फिर भी मैं समझती हूँ कि जिसने एक बार भी उसका दीदार—दर्शन—प्राप्त कर लिया, वह सदा के लिए आनन्द-सागर में डूब जाता है। दुःख और कष्ट की बात उसके मन में आती ही नहीं।"

राबिया, बसरा नगर या इराक देश की ही नहीं थीं, न वे केवल अरब की थीं। संसार के सब देशों और सब जातियों के लोग राबिया जैसी भक्तिभाव वाली ईश्वर-परायण महिला के प्रति सदा श्रद्धा से सिर झुकाते रहेंगे।

*

मदालसा

पुराने समय की बात है, शत्रुजित् नामक एक बड़ा पराक्रमी राजा था। यज्ञों द्वारा उसने देवताओं की प्रसन्नता प्राप्त की थी। दान, न्याय-परायणता और प्रजाप्रेम के कारण प्रजा के लोग उसे पिता की तरह पूज्य और आदरणीय समझते थे। उनके राज्य में समय पर वर्षा होती, धरती धन और धान्य से भरपूर रहती, प्रजा में शान्ति रहती। राजा ब्राह्मणों का बहुत सम्मान करता था। उनकी बात को 'आज्ञा' समझता।

शत्रुजित् के पुत्र का नाम था ऋतध्वज। ऋतध्वज योग्य पिता का योग्य पुत्र था। वह अपनी समान अवस्था, बुद्धि और विचार वाले बालकों से घिरा रहता। वे कभी शास्त्र की बातें करते और कभी शस्त्र की; कभी साहित्य की चर्चा करते और कभी संगीत की; कभी नाटक देखते-खेलते और कभी युद्ध के दाव-पेच सीखते।

उस बाल-मण्डली में सभी सद्गुणी बालक जुटते।

नागलोक के वासी अश्वतर, नामक नाग के दो पुत्र पृथ्वीलोक में घूमने के उद्देश्य से आए। वे अपने को ब्राह्मण-पुत्र बताते थे। देखने में दोनों बहुत सुन्दर थे और उनका स्वभाव भी अच्छा था। वे भी उस बाल-

मण्डली में आकर खेलते।

धीरे-धीरे वे दोनों बालक राजकुमार ऋतध्वज के मित्र बन गए। अच्छे लोगों की मित्रता तो बढ़ती ही जाती है। वैसे ही उनकी राजकुमार ऋतध्वज के साथ गहरी मित्रता हो गई। फिर तो यह हाल हो गया कि उनके बिना ऋतध्वज का दिल ही न लगता। दिनभर तीनों इकट्ठे खेलते, खाते और पढ़ते।

नागलोक के वे दोनों बालक रात को वापस नागलोक में चले जाते और दूसरे दिन आ जाते। किन्तु वे दोनों जितनी देर पाताल लोक में रहते, उदास रहते और दिन निकलते ही पृथ्वीलोक पर चले आते।

अपने दोनों पुत्रों के मृत्युलोक से प्यार को देखकर एक दिन अश्वतर नाग ने पूछा, "पुत्रो! तुम दोनों का मृत्युलोक के प्रति इतना ज्यादा प्रेम क्यों है? मैं देखता हूँ कि यहाँ आते ही तुम उदास हो जाते हो और वापस जाने के लिए उतावले रहते हो। तुम्हें यहाँ क्या कमी मालूम देती है और वहाँ क्या सुख मिलता है? मुझे अपने मन की बात ठीक-ठीक बताओ!"

दोनों पुत्रों ने कहा, "पिताजी, मृत्युलोक में एक राजा है, शत्रुजित्। उसके पुत्र राजकुमार ऋतध्वज से हमारी मित्रता हो गई है। वह रूपवान्, सरल, शूरवीर

और मधुरभाषी है। वह हम दोनों को बहुत चाहता है। उस मित्र के उपकार का बदला चुकाने के लिए, एक काम है पर हम उसे कर नहीं सकते। हम क्या, भगवान् के सिवा कोई भी नहीं कर सकता।"

पिता बोले, "तुम बताओ तो सही कि वह कौन-सा काम है ? यह तो बाद में देखेंगे कि वह हो सकता है या नहीं।"

पुत्र बोले, "पिताजी, हमारे मित्र ऋतध्वज ने कुमारावस्था की एक घटना बताई थी, वह इस प्रकार है : उनके पिता शत्रुजित् के पास गालव नाम के एक ऋषि आए थे। उनके पास एक बहुत बढ़िया घोड़ा था। उन्होंने अपनी समस्या राजा को बताते हुए कहा कि 'एक पापाचारी दैत्य मेरे आश्रम में आकर तरह-तरह के उपद्रव करता है। वह शेर, हाथी तथा अन्य जानवरों और कीड़े-मकोड़ों का रूप बनाकर मुझे तंग करता रहता है। वह मेरी ध्यान-समाधि में विघ्न डालता है। मैं चाहूँ तो उसे अपने क्रोध की आग में जलाकर राख कर सकता हूँ, पर मुझे क्रोध नहीं करना चाहिए। क्रोध ऋषि के लिए तपस्या में विघ्नरूप है।

"एक दिन की बात है कि उस दैत्य द्वारा कष्ट दिये जाने से मैं व्याकुल मन बैठा हुआ था कि यह

घोड़ा आकाश से धरती पर उतर आया। तब आकाश-वाणी हुई कि यह घोड़ा बिना थके सारी पृथ्वी की परिक्रमा कर सकता है। इसे भगवान् सूर्य ने आपके लिए भेजा है। आकाश, पाताल और जल में भी यह जा सकता है। इसलिए इसका नाम कुवलयाश्व रखना ठीक होगा। जो पापी दानव आपको दुःखी करता है, उसका वध राजा शत्रुजित् का पुत्र ऋतध्वज इस अश्व पर चढ़कर करेगा। इस चमत्कारी घोड़े को पाकर, राजकुमार की प्रसिद्धि भी कुवलयाश्व के नाम से होगी।

"हे राजन्! उस आकाशवाणी के अनुसार मैं इस घोड़े को लेकर आपके पास आया हूँ। मेरी तपस्या निर्विघ्न पूरी हो, इसकी व्यवस्था करना आपका काम है। आप अपने पुत्र को मेरे साथ भेजिए ताकि उस दैत्य का विनाश हो सके।'

"गालव मुनि की धर्म-सम्मत बात को सुनकर राजा ने राजपुत्र को वह घोड़ा लेकर ऋषि गालव के साथ उनके आश्रम में जाने की आज्ञा दी।"

नागराज ने कहा, "पुत्रो! यह कथा बड़ी रोचक है। अब आगे की कथा सुनाओ।"

पुत्रों ने कहा, "महर्षि गालव के आश्रम में पहुँचकर राजकुमार ऋतध्वज ने दैत्य के सारे उपद्रवों को

शान्त कर दिया। कुछ दिनों तक कोई उपद्रव नहीं हुआ। राजकुमार कुवलयाश्व तो वहीं डेरा डाले पड़ा था, पर उस दैत्य को इस बात का पता नहीं था। एक दिन फिर वह दैत्य शूकर का रूप धार कर, उपद्रव

करने लगा। उसे देखते ही आश्रम-वासियों ने हल्ला मचाना शुरू कर दिया। राजकुमार घोड़े पर सवार होकर, धनुष तानकर उसके पीछे दौड़ा। एक बाण मारकर उसे घायल भी कर दिया। तब वह शूकर भागकर झाड़ियों में जा छिपा। घोड़े पर सवार राजकुमार ने फिर उसका पीछा किया तो वह भागकर एक ऐसी जगह जा पहुँचा, जहाँ धरती में बड़ा गहरा गड्ढा था। वह शूकर उस गड्ढे में घुसकर आँखों से ओझल हो गया। राजकुमार भी उसके पीछे उस अँधेरे गड्ढे में जा घुसा। पर भीतर जाने पर वह शूकर कहीं दिखाई नहीं दिया। पर जो दिखाई दिया, वह अद्भुत था। उसे एक अत्यन्त सुन्दर नगर दिखाई दिया। यहाँ सोने के महल, उनमें मणियों के दीप और भोग की समस्त सामग्रियां संचित थीं। राजकुमार कुवलयाश्व नगर की शोभा को देखने के लिए घूमने लगे, पर उन्हें कहीं भी कोई मनुष्य दिखाई नहीं दिया। कुछ देर बाद एक स्त्री दिखाई दी जो बड़ी उतावली से चली जा रही थी। राजकुमार ने उससे पूछा, 'तू किसकी बेटी है और कहाँ जा रही है?' पर उसने कोई उत्तर नहीं दिया और एक महल की सीढ़ियों पर चढ़कर भीतर चली गई।

राजकुमार ने भी घोड़ा एक जगह बांध दिया और

उसके पीछे-पीछे महल में प्रवेश किया। राजकुमार उस महल के भीतर के वैभव को आश्चर्य से देख रहा था। भीतर के एक बड़े कमरे में, एक सोने के पलंग पर एक नवयुवती कन्या बैठी हुई थी। राजकुमार ने समझा कि यह कोई पाताल लोक की देवी है। उस सुन्दरी कन्या ने भी राजकुमार को प्यासी आँखों से देखा। राजकुमार के भीतर आते ही वह पलंग पर से उठ खड़ी हुई। दोनों एक-दूसरे को देखकर, एक-दूसरे के रूप-गुण-यौवन पर मोहित थे। वह सुन्दरी राजकुमार को देखते-देखते ही मूर्च्छित होकर गिर पड़ी। इतने में एक और युवती, जिसे राजकुमार ने महल की सीढ़ियाँ चढ़ते देखा था, पंखा ले आई और उस सुन्दरी को होश में लाने के लिए हवा करने लगी।

राजकुमार ने उससे पूछा कि तुम्हारी यह सखी किस कारण बेहोश हो गई, इसे क्या कष्ट है, यह कष्ट किस उपाय से दूर होगा ?

तब उस युवती ने राजकुमार को बताया कि 'गन्धर्वों के राजा विश्वावसु की, यह मदालसा नाम की कन्या है। वज्रकेतु का पुत्र पातालकेतु इसे गंधर्वलोक से बलपूर्वक उठा लाया है। वह इससे, इसकी इच्छा के विरुद्ध विवाह करना चाहता है। मेरी सखी आत्म-हत्या करके प्राण त्यागने का प्रयत्न कर चुकी है। इसे

वह कतई पसन्द नहीं है। सुना है कि इस दानव को, मर्त्यलोक का कोई व्यक्ति अपने बाणों से बींधकर मार डालेगा और फिर वही इसका पति बनेगा। यह भी सुना है कि आज पातालकेतु शूकर का रूप धारकर मर्त्यलोक में गया था और किसी के पीछा करने पर भाग आया है। मैं इसी बात का ठीक-ठीक पता लगाने गई थी। बात सच है और उसे मर्त्यलोक के किसी वीर ने बाण से बींध डाला है।

मेरी सखी के दुःख का कारण यह है कि देववाणी के अनुसार इसका पति वह व्यक्ति होगा जिसके बाण से पातालकेतु विंधेगा। आपको देखकर शायद यह आपको ही अपना पति बनाना चाहती है जो असंभव है। यही इसके दुःख का कारण है। अब आप अपना भी कुछ परिचय दीजिए ?'

कुवलयाश्व ने कहा, 'शुभे ! मैं राजा शत्रुजित् का पुत्र हूँ और पिता की आज्ञा से मुनियों के यज्ञ-तप की रक्षा के लिए तपोवन में महर्षि गालव के आश्रम में था। वहाँ एक दानव शूकर का रूप धरकर आया और उपद्रव मचाने लगा। मैंने जब उसे अपने बाण से बींध डाला तो वह भाग खड़ा हुआ। मैंने भी अपना घोड़ा उसके पीछे दौड़ाया। फिर वह भागते-भागते एक गहरे गड्ढे में जा घुसा। मैं भी उसके पीछे-पीछे

घोड़े पर चढ़ा उस गड्ढे में जा कूदा। कुछ देर अँधेरे में चलने के बाद मुझे प्रकाश दिखाई दिया और फिर यह नगर और उसके बाद तुम्हें देखा।'

अब तक मदालसा की मूर्च्छा टूट चुकी थी और वह इन सारी बातों को सुनकर बहुत प्रसन्न थी। उसका मनचाहा हो गया था।

मदालसा और कुवलयाश्व विवाह-बंधन में बँध गए। फिर राजकुमार कुवलयाश्व ने मदालसा को अपने साथ घोड़े पर बिठाया और पाताल से निकलने की तैयारी की।

पातालकेतु को ज्योंही पता चला कि मदालसा को लेकर कुवलयाश्व भागने की तैयारी कर रहा है, त्योंही वह दैत्यों की फौज ले आया और दोनों में लड़ाई शुरू हो गई। अन्त में जीत कुवलयाश्व की ही हुई। दैत्य मारे गए और जो बचे वे भाग खड़े हुए।

राजकुमार कुवलयाश्व फिर मदालसा के साथ घोड़े पर सवार हुआ और अपने पिता शत्रुजित् की राजधानी में पहुँचा। जब कुवलयाश्व ने दैत्यों को मारने और मदालसा को छुड़ाने और उससे विवाह करने की बात बताई तो उसके माता-पिता बहुत प्रसन्न हुए।"

इस कहानी को आगे बढ़ाते हुए दोनों नागकुमार अपने पिता से बोले, "पिताजी, फिर बहुत दिनों बाद

कुवलयाश्व घोड़े पर सवार यमुना के तट पर पहुँचा। वहाँ पातालकेतु का भाई तालकेतु वेश बदलकर रहता था। साधुओं जैसा वेश बनाकर, वह कपटी एक कुटिया में रहता था। उसने कुवलायश्व से अपने भाई पातालकेतु की मौत का बदला लेने के लिए ही यह छल रचा था। उसने कुवलयाश्व से कहा कि मुझे यज्ञ करने के लिए धन की आवश्यकता है। अगर आप अपने गले की यह मोतियों की माला मुझे दे दें तो इससे यज्ञ की सामग्री और दक्षिणा देने का काम चल जाएगा।

राजकुमार ने उस कपटी मुनि को अपना हार दे दिया। फिर उस कपटी मुनि ने कहा कि आप यहाँ ठहरिये। मैं यज्ञ-सम्बन्धी आवश्यक काम करके शीघ्र वापस आऊँगा।

मुनि-वेश में तालकेतु चुपके-से कुवलयाश्व के पिता राजा शत्रुजित् के पास जा पहुँचा और बोला, 'राजन्! आपके पुत्र वीर कुवलयाश्व मेरे आश्रम की रक्षा कर रहे थे। उन्हें किसी दुष्ट ने मार डाला है। यह देखिये उनके गले में पड़ा मोतियों का हार। अब जैसा उचित समझें करें।'

यह झूठा समाचार राजा शत्रुजित् को सुनाकर तालकेतु वहाँ से चला आया। उधर राजकुमार के मारे जाने का समाचार सुनकर सारा राज-परिवार

हाहाकार करने लगा। नगर में भी शोक-समाचार फैल गया।

ऋतुध्वज (कुवलयाश्व) की पत्नी मदालसा ने पति-वियोग में शरीर छोड़ दिया।

उधर तालकेतु वापस अपनी कुटिया पर गया और राजकुमार कुवलयाश्व से बोला कि अब आप जा सकते हैं, मेरा कार्य सफल हुआ।

कुवलयाश्व अपने हवाई चाल के घोड़े पर चढ़ महल में आ गया। वहां पहुँचकर उसने सभी उदास-मुझाए चेहरे देखे। उसने यह भी देखा कि लोग उसकी ओर आश्चर्य से देख रहे हैं! उसकी समझ में जब कुछ नहीं आया तो उसने पूछा कि क्या बात है?

राजा शत्रुजित् ने सारी बात बताई तो मदालसा के प्राण-त्याग के समाचार से कुवलयाश्व को बड़ा धक्का लगा। उसने सारी परिस्थिति पर विचार किया और इस निश्चय पर पहुँचा कि मैं माता-पिता की सेवा करते हुए, शेष जीवन बिताऊँगा। अब विवाह नहीं करूँगा।"

दोनों नागपुत्रों ने कहा, "पिताजी! बस, यही एक दुष्कर कार्य है, जिसे हम ऋतध्वज के लिए कर सकते हैं। पर यह कार्य हमें तो असंभव लगता है।"

पर नागराज ने उनसे असहमति प्रकट करते हुए

कहा, "पुत्रो ! निराशा व्यर्थ है। अपने भाई कम्बल के साथ मैं तपस्या द्वारा तुम्हारे मित्र की मनोकामना पूरी करने का प्रयत्न करूँगा।"

हिमालय के प्लक्षावरण तीर्थ में जाकर अश्वतर और कम्बल ने सरस्वती की उपासना की। सरस्वती ने प्रसन्न होकर कहा, "मेरी कृपा से तुम्हें सातों स्वर, सातों राग, सातों गीत, सातों मूर्च्छनाएँ, उनचास प्रकार की तानें और तीन ग्राम—ये तुम दोनों को आ जाएँगे। इसके अतिरिक्त तुम्हें चार प्रकार के पद, तीन ताल और तीन लयों का ज्ञान भी हो जाएगा।"

सरस्वती के वरदान से उन्हें संगीत शास्त्र का ज्ञान हो गया। तब वे कैलास पर्वत पर जाकर संगीत द्वारा भगवान् शंकर को प्रसन्न करने लगे।

भगवान् शंकर ने भी प्रसन्न होकर उन्हें वर माँगने को कहा। तब अश्वतर ने कहा, "कुवलयाश्व की पत्नी मदालसा, जो मर चुकी है—पहले जैसे रूप में ही, मेरी कन्या के रूप में प्रकट हो। उसे पूर्वजन्म की स्मृति बनी रहे और उसे योग विद्या का ज्ञान हो।"

महादेव शंकर ने 'तथास्तु' कहा और अन्तर्धान हो गए।

अश्वतर और कम्बल पाताल में लौट आए। वहाँ उन्हें कन्या की प्राप्ति हुई। नागराज ने उसे गुप्त रूप

से महलों में रखा। वह समय पाकर विवाह योग्य हो गई।

फिर एक दिन दोनों राजकुमार अपने मित्र ऋतध्वज को अपने साथ पाताल लोक ले आए। नागलोक की अद्‌भुत शोभा देखकर ऋतध्वज चकित रह गया। जब वे नागराज अश्वतर के महल में पहुँचे तो ऋतध्वज ने अपने मित्रों के पिता को रत्न-जड़े सिंहासन पर बैठे देखा। ऋतध्वज ने नागराज को प्रणाम किया। नागराज ने भी ऋतध्वज को छाती से लगाया और बोले कि हमारे दोनों पुत्र भी तुम्हारी बहुत प्रशंसा करते हैं।

तब नाग-कुमारों ने मदालसा की सारी कहानी अपने पिता को सुनाई और बताया कि उसके विछोह के दुःख से ऋतध्वज व्याकुल रहता है। मदालसा किसी ईश्वरीय चमत्कार से जीवित हो जाए तो ऋतध्वज के जीवन में आनन्द की हिलोर आ सकती है।

तब नागराज अश्वतर ने महल के भीतर से पुत्री मदालसा को बुलाया और ऋतध्वज को दिखाया।

उसे देखते ही ऋतध्वज लज्जा छोड़कर उसकी ओर बढ़ा। दोनों ने एक-दूसरे को इस तरह देखा जैसे लम्बे वियोग के बाद पति-पत्नी एक दूसरे को पाकर देखते हैं।

नागराज अश्वतर ने मदालसा के सरकर पुनः उसी

रूप में जन्म की सारी कहानी कह सुनाई। सब इस मिलन से अत्यन्त प्रसन्न हुए।

अब ऋतध्वज नागराज से आज्ञा लेकर और मित्रों से विदा होकर, मदालसा को लेकर अपने पिता के पास पहुँचा। वे सब भी मदालसा के दोबारा प्राप्त होने से अत्यन्त प्रसन्न हुए।

मदालसा को भगवान् शंकर के वरदान से, पहले जन्म की सारी बातें याद थीं। साथ ही उसे योग विद्या का ज्ञान भी था।

कई वर्ष बीत गए। राजा शत्रुजित् स्वर्ग सिधार गए। राजकुमार ऋतध्वज गद्दी पर बैठा।

मदालसा ने एक पुत्र को जन्म दिया। राजा ऋतध्वज ने उसका नाम विक्रान्त रखा। नामकरण संस्कार के अवसर पर मदालसा हँसने लगी। नवजात शिशु जब कभी रोने लगता तो मदालसा लोरियाँ गा-गाकर उसे कहती, "अरे रोता क्यों है? तू तो अजर-अमर है। तेरा रोना और हँसना, भूख और प्यास, गर्मी और सर्दी सब शरीर के धर्म हैं, आत्मा का इनसे कोई सम्बन्ध नहीं। शरीर जन्मता है, बढ़ता है, कभी दुर्बल और कभी पुष्ट होता है। कभी इसे रोग आ घेरते हैं और कभी भोगों में आनन्द लेता है। आज तुम्हारी बाल-अवस्था है, फिर यौवन आएगा और फिर बुढ़ापा। ये

सब शरीर के धर्म हैं। पर तुम तो आत्मा हो, जो सदा एकरस रहता है।"

मदालसा उस अबोध शिशु को इसी तरह उपदेश देती रहती। वह बड़ा हुआ और उसने राज-पाट के प्रति अपनी वितृष्णा दिखानी शुरू की। वह मोह-ममता में नहीं फँसा। राजसी ठाठ-बाट ने भी उसे आकर्षित नहीं किया।

कुछ वर्ष बाद मदालसा ने दूसरे पुत्र को जन्म दिया और उसे भी लोरियों में उपदेश सुना-सुनाकर ज्ञानी बना दिया। वह भी राज-काज के प्रति उदासीन हो गया।

कुछ वर्ष बाद तीसरा पुत्र उत्पन्न हुआ। उसका भी वही हाल हुआ। फिर चौथा पुत्र हुआ। उसके नाम-करण की बारी आई तो फिर मदालसा की हँसी फूट पड़ी।

राजा ने रानी से पूछा, "शुभे! जब-जब मैं पुत्र का नाम रखता हूँ तो तुम हँसती हो। क्या तुम्हें मेरे रखे नाम पसन्द नहीं हैं? अब इस चौथे पुत्र का नाम तुम्हीं रखो।"

रानी ने कहा, "मैं आपकी आज्ञा का पालन करके इसका नाम रखूँगी।" चौथे पुत्र का नाम रानी ने अलर्क रखा। तब राजा ने रानी से पूछा कि "इस नाम का

अर्थ क्या है ?"

रानी ने कहा, "राजन् ! नाम तो काम चलाने के लिए रखा जाता है। उसमें कोई अर्थ खोजना व्यर्थ है। आपने जो नाम रखे थे, उनके अर्थ पर विचार करें तो मालूम होगा कि उनमें कुछ भी सार नहीं था। आत्मा तो सभी उपाधियों से रहित है।"

रानी की बात कुछ-कुछ राजा की समझ में आई। रानी फिर पुत्र को पहले ही की तरह उपदेश देने लगी।

राजा ने उससे कहा, "क्या तुम सभी पुत्रों को ज्ञानी बनाकर मेरे वंश को ही समाप्त कर दोगी ? कम से कम इसे तो राज-काज सँभालने के लिए छोड़ दो ! इसे ऐसा उपदेश दो कि यह राज्य का उत्तराधिकारी बने।"

तब मदालसा ने उसे ऐसा उपदेश देना प्रारंभ किया कि वह कर्म-मार्ग द्वारा प्रजा का पालन भी करे और संसार में उसी तरह रहे जैसे जल में कमल रहता है। राजनीति की बातें भी उसने अलर्क को समझाईं। गृहस्थ के कर्तव्यों का उपदेश भी दिया।

अलर्क ने समय आने पर विवाह किया और अपने कर्तव्यों का सावधानी से पालन करने लगा।

महाराज ऋतध्वज रानी मदालसा के साथ राज-काज अलर्क को सौंपकर तपोवन को चले गए। चलते

समय रानी ने पुत्र को एक अंगूठी देते हुए कहा, "बेटा! यदि तुम्हारे ऊपर कोई संकट आए तो इस अंगूठी में रखे उपदेश को निकालकर पढ़ लेना।"

अलर्क ने राज्य संभाला। उसकी भोगों में आसक्ति बढ़ती गई। राज्य का विस्तार भी किया, कोश भी खूब बढ़ाया, पर संतुष्टि नहीं हुई।

उनके एक बड़े भाई, जो विरक्त होकर साधना-उपासना में लगे हुए थे, उन्हें जब छोटे भाई के भोगों में लिप्त होने का समाचार मिला तो उन्होंने उसे चेताने के लिए एक योजना बनाई। वे काशिराज के पास गए और बोले कि "मेरे पिता का सारा राज्य अलर्क ने हथिया लिया है। आप मेरी सहायता करें तो मैं अपना हिस्सा प्राप्त कर सकता हूँ।"

काशिराज ने अलर्क के राज्य पर आक्रमण कर दिया। इस संकट की घड़ी में अलर्क ने अंगूठी में छिपे उपदेश को निकालकर पढ़ा।

उस उपदेश को पढ़कर राजा की सारी विषयासक्ति जाती रही।

□□□